मुझे पढ़ना है...

बवाना पुनर्वास बस्ती में बालिका शिक्षा

(लघु शोध)

लेखनः
सुनीता ठाकुर

शोध टीमः
कल्याणी, बियास, मोनिका, रति, रोहिणी, हेमलता, शाश्वती, साबरा, स्मिता, सुनीता, श्रीरेखा

इस शोध से जुड़े बवाना के साथीः
ए ब्लॉक : हिना ख़ातून, ज़ीनत, मीनू कुमारी, निर्मला, मीना कुमारी
बी ब्लॉक : चन्दा, गौरी हालदार, शहनाज़, रज़िया, उर्मिला, माया, शन्नो
सी ब्लॉक : आजमेरी, रिज़वाना, शबिया, चांदनी, सलमा, आशियाना, पिंकी, खुशबू, डौली
डी ब्लॉक : मुमताज़, खुशबू कुमारी, तबस्सुम, चंचल, जहाना ख़ातून, नाज़रा, शबीना, जूली, शबाना
ई ब्लॉक : नसीमा, रीना, नंदिता, इसरत ख़ातून, नसीम बानो

चित्रः
बिंदिया थापर

विशेष आभारः
जया श्रीवास्तव, ख़ुर्शीद अनवर

प्रकाशकः
जागोरी
सी – 54, साउथ एक्सटेंशन
भाग II, नई दिल्ली 110 049
फ़ोनः 2625 7140, हेल्पलाइनः 2625 7015, फ़ैक्सः 2625 3629
ई मेलः jagori@jagori.org

मुद्रणः
चौहान ग्राफिक्स

जागोरी - एक नज़र

जागोरी की शुरूआत 1984 में हुई थी। यह औरतों को प्रशिक्षण, संप्रेषण, डॉक्यूमेंटेशन व संदर्भ केंद्र है। जागोरी, व्यापक स्तर पर औरतों के जीवन पर सीधा प्रभाव डालने वाले अनेक आंदोलनों जैसे सांप्रदायिक हिंसा विरोधी, आर्थिक नीतियों, प्रजनन स्वास्थ्य कार्यक्रम व नीतियों विरोधी आंदोलन, औरतों पर होने वाली हिंसा विरोधी आंदोलन से जुड़ी रही है। इसकी स्थापना के पीछे मुख्य उद्देश्य थे –

- ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में औरतों व बालिकाओं के सशक्तिकरण से जुड़े मुद्दों पर चेतना जागृति लाना व संघर्ष करना।
- विभिन्न मुद्दों पर काम कर रहे समूहों के लिए सृजनात्मक पठन सामग्री व महत्वपूर्ण विषयों पर संप्रेषण सामग्री का प्रकाशन व वितरण करना।
- महिला समूहों, स्वयंसेवी संस्थाओं व विकास खण्ड की सूचना तथा विश्लेषण की ज़रूरतों को मद्देनज़र रखते हुए औरतों के अधिकारों पर केंद्रित संदर्भ केंद्र का गठन करना।
- भारत में औरतों के दर्जे पर जानकारी प्रदान करना, मौजूदा सूचना स्रोतों का नारीवादी नज़रिए से विश्लेषण करते हुए महिला संबंधी महत्वपूर्ण विषयों पर सक्रिय शोध कार्य करना।

ये शोध उन समस्याओं से प्रभावित व पीड़ित लोगों के साथ मिलजुलकर उनके जीवन की स्थितियों का विश्लेषण करते हैं तथा समस्याओं के सार्थक समाधान की खोज करते हैं। ये शोध (अपनी सक्रियता के रहते) सामाजिक बदलाव का आधार भी बनते हैं। वे कई स्तरों पर एक साथ असर छोड़ते हैं। जैसे –

- सामुदायिक समस्याओं पर एकजुटता व संगठन की समझ बनाना।
- मुद्दे के प्रति नारीवादी नज़रिए के साथ सामाजिक सोच बढ़ाना।
- सकारात्मक सुझावों व सवालों के साथ उन कार्यक्षेत्रों एवं सरकार के साथ पैरवी करना।

एक पुख्ता सोच और शोध नीतियों के तहत अपने शोध क्षेत्रों में हम मज़बूत रिश्ते बना पाए हैं। हमारा पहला उद्देश्य है शोध क्षेत्र के लोगों और उनकी समस्याओं से जुड़ना, उन्हें समझना एक तैयारी के साथ उनके लिए मददगार रवैया अपनाकर

चलना और पूरी शोध प्रक्रिया में आपसी विश्वास, सहयोग बनाए रखना। नतीजन इन शोध कार्यों से जुड़े शोधार्थियों की सोच पुख्ता हुई। साक्षात्कार या अन्य शोध प्रक्रियाओं में शामिल लोगों में भी समझ बढ़ी है। वे एकजुट हो पाए हैं।

इस तरह जागोरी के शोधकार्य एक अभियान का रूप ले लेते हैं। इस आपसी सहयोग की प्रक्रिया में हर वह व्यक्ति सहभागी हो सकता है जो उस मुद्दे के प्रति संवेदनशीलता और समझ रखता है।

प्रस्तावना - विस्थापन और इंसानी हक़

इसी क्रम में शुरू हुआ (जुलाई 2004) महिलाओं व बच्चों पर विस्थापन के प्रभावों पर हमारा शोध। यह शोध बच्चों व युवाओं की ही जुबानी उन प्रवृत्तियों की पड़ताल करता है जो विस्थापित समुदायों के मानवीय हक़ों का हनन करते हैं। हमारी कोशिश है इस शोध के ज़रिए विस्थापन और बालिका शिक्षा के अलग अलग पक्षों और उनके आपसी संबंधों को समझना तथा सरकार की नीतियों और नीयत को परखना। हमारी उम्मीद है कि यह शोध और इससे मिली जानकारी अपने हकों के लिए लड़ाई लड़ रहे बवाना जैसी पुनर्वास बस्तियों के वासियों के संघर्ष में मददगार होगी।

राजधानी दिल्ली की चकाचौंध और विशाल अट्टालिकाओं के आगे–पीछे छुपी बसी सैकड़ों झुग्गी–बस्तियाँ हज़ारों परिवारों का नीड़ हैं। यहाँ अपने–अपने सुख–दुःख, ख़ुशी–ग़म, आशा–निराशा के साथ लोग जीवन की डगर नापते चलते हैं। ये न हो तो शहर की आर्थिक व्यवस्था चरमरा कर ढह जाएगी। ये रिक्शा–चालक, कुली, ड्राइवर, रसोइए, ऑटो–चालक, रेहड़ी–खोमचे वाले कबाड़ चुनने वाले, फ़ैक्ट्रियों और कोठियों में काम करने वाले–सब के सब दिल्ली की अर्थ व्यवस्था के अभिन्न अंग हैं। इसके बावजूद, शहर के हुक़्मरानों, कोठियों–फ़्लैटों वालों, अख़बार–टीवी वालों के लिए ये ख़बर तभी बनते हैं जब कोई दुर्घटना हो, विस्थापन हो, महामारी हो या अपराध हो। इनके अनुभव, इनकी ताक़त, इनके संघर्ष, इनके विचार और इनकी रचनात्मकता को तथाकथित 'उच्च वर्ग' अनदेखा करता है। बल्कि इनकी बस्तियों, को 'साफ़–सुथरे' शहर के ऊपर धब्बा माना जाता है और इसीलिए इन्हें हटाने व शहर को 'साफ़' करने के लिए जब तब बुलडोज़र चलाए जाते हैं।

ऐसा 30–40 वर्षों से होता आ रहा है। बस्तियाँ तोड़ी जाती है। पर आधी रोटी की तलाश में आए लोग जाएं तो कहाँ जाएं? कहीं और बस जाते हैं। बस्तियाँ टूटती रहीं बनती रहीं, टूटती रहीं।

पिछले 25 सालों–'और खास करके 1992 के बाद से झुग्गियां तोड़ने की रफ़्तार बढ़ती गई। 1991 में हमारी सरकार ने वैश्वीकरण की नीति के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लिए अपने दरवाज़े खोल दिए। हमें भी न्यूयार्क और पेरिस बनाने थे। विदेशी मेहमान हमारे शहरों की 'गन्दगी' देखेंगे तो पूँजी विनिवेश नहीं होगा। इसलिए 'सफ़ाई' और 'सौन्दर्यीकरण' की प्रक्रिया बढ़ाई गई। पूरे देश में सभी बड़े–छोटे शहरों में विस्थापन ज़ोर पकड़ने लगा। यमुना पुश्ता से होलम्बी कलाँ और भलस्वा, मोलर बन्द और बवाना–विस्थापन की प्रक्रिया 2001 के बाद से क्रूरता के साथ लागू की जा रही है। पुलिस–प्रशासन, क़ानून–मीडिया, भी बुलडोज़र के साथ हैं।

पहले तो कोर्ट कचहरी से कुछेक स्टे भी मिल जाते थे, पर अब नहीं। न्यायाधीश स्वयं हुक़्म सुनाने लगे कि ये लोग ग़ैर–क़ानूनी ढंग से रह रहे हैं। हमारा संविधान हर नागरिक को देश में कहीं भी आने–जाने व रहने का हक़ देता है, परन्तु संवैधानिक हक़ों को ताक़ पर रख कर दिल्ली न्यायालय ने 2001 में फ़ैसला दिया कि सभी ग़ैर–क़ानूनी ढाँचे गिरा दिए जाएँ। तारीफ़ ये है कि अक्षरधाम मंदिर और मैट्रो के स्टेशन हटाने का हुक़्म नहीं हुआ, जो यमुना की ज़मीन पर ही हैं। हटाए कौन जा रहे हैं जो ग़रीब बस्तियों में रहते थे। – *जया श्रीवास्तव*

यमुना पुश्ता

दिल्ली का यमुना पुश्ता! एक ख़ास इलाका! एक ख़ास पहचान, ख़ास इतिहास–पर था, है नहीं। पुश्ता–यानि पुश्ते पर रहने वाले भारतीय नागरिकों को यमुना से अलग हुए दो साल हो गए हैं। पुश्ता की आबादी दूर दूर तक फैली थी–आई.टी.ओ. से पुरानी दिल्ली रेलवे स्टेशन तक। रिंग रोड राजघाट से पुराने रेलवे पुल तक। इस आबादी का अब कोई निशान बाकी नहीं रहा। शहर को सुंदर बनाने के लिए उन्हें हटा दिया गया। यह आबादी यमुना के पश्चिमी किनारे पर 100 एकड़ से भी ज़्यादा ज़मीन पर फैली हुई थी। एक लाख से ज़्यादा की आबादी–22 से भी ज़्यादा झुग्गी बस्तियां।

जितनी बड़ी स्लम बस्ती, उतना गहरा इतिहास। कहते हैं 1944 के बाद से ही लोग यहां बसने लगे थे। हिन्दुस्तान पाकिस्तान के बंटवारे (1947) के बाद शरणार्थी भी यहां आकर बसने लगे। सरकार को जंगल की ज़मीन पर लोगों का बसना तब बुरा नहीं लगा था। इस ज़मीन को लोगों ने अपने रहने लायक़ बनाया, अपनी मेहनत से खेती करने लायक़ बनाया। उस समय तो इतनी बड़ी आबादी की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए बिजली पानी की भी कुछ व्यवस्था की गई। आसपास की उपजाऊ ज़मीन पर खेती करके, बिजली घर में काम करके और आसपास के इलाकों में दुकान, व्यवसाय करके लोग अपनी जीविका कमाने लगे। 1982 में एशियाई खेलों के दौरान बड़े पैमाने पर निर्माण कार्य हुए। सरकार को मज़दूरों की ज़रूरत पड़ी तो बाहर से आए मज़दूर भी बड़ी तादाद में यहां आकर बस गए। इस तरह पुश्ता एक भरी पूरी आबादी वाला क्षेत्र बन गया। पुश्ता की गिनती एशिया की गिनी चुनी बड़ी झुग्गी बस्तियों में होने लगी। पहले जंगली व सरकारी आंकड़ों में बेकार समझी जाने वाली ज़मीन बेशकीमती नज़र आने लगी।

पुश्ता पर रहने वाले लोग शहरों में कमाने खाने की आस लेकर शहर आए थे। यहां सब कुछ बहुत अच्छा नहीं तो ठीकठाक ही चल रहा था। ये मेहनतकश लोग विभिन्न किस्म के रोजगारों से जुड़े हुए थे। रिक्शा चालक, ऑटो चालक, दिहाड़ी मजदूर, रेहड़ी, खोमचों पर मूंगफली, सब्जी बेचने वाले, कबाड़ी, सब के सब दिल्ली की अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग रहे हैं। यहां आजीविका और आवास एक दूसरे के साथ गुंथे हुई थी। घर के आसपास ही काम होने से आजीविका क़ायम थी–कम तनख्वाह होने के बावजूद काम चला लेते थे। आने जाने का खर्चा उठाना नहीं पड़ता था।

पुश्ते की झुग्गियों को तोड़ने का सिलसिला बरसों से चलता रहा है। 1962 के पहले मास्टर प्लान से ही यहां से झुग्गियों को हटाया जाने लगा था। आई.टी.ओ. और उसके आसपास के इलाक़ों को विकास के नाम पर ख़ाली कराया गया। अस्सी के दशक में लोगों के घरों और खेती की ज़मीनों पर डी.डी.ए. ने क़ब्जा करके सार्वजनिक संपत्ति घोषित कर दिया।

पुश्ता की झुग्गियों को गिराने का सिलसिला 2003 में पूरा ज़ोर पकड़ने लगा–जब दिल्ली उच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि यमुना के किनारे मौजूद तमाम अवैध

इमारतों, झुग्गियों, इबादतगाहों, और/या अन्य अवैध ठिकानों को दो महीने के अंदर पूरी तरह हटा दिया जाए। दिसंबर 2003 तक बहुत कुछ ख़ास नहीं हुआ। 'जनवरी में एक सरकारी मीटिंग में फ़ैसला लिया गया–पुश्ता में रहने वालों के लिए 50,000/– प्रति प्लॉट की व्यवस्था की जाए और इस जगह की सफ़ाई और पुनर्वास का काम फ़ौरन शुरू कर दिया जाए।'

इसके बाद तो जैसे झुग्गियां गिराने के हवाई दौर शुरू हो गए। 22 जनवरी को गौतमपुरी फेस–2 की झुग्गियों को तोड़ा गया। इस काम को अंजाम देने के लिए पुलिस की चार कंपनियां तैनात की गईं। पूरे इलाक़े को सील कर दिया गया था। अख़बारों में सिर्फ़ सरकारी सच ही छपा। चारों तरफ़ से हताश पुश्तावासी अपने भविष्य के लिए भाग दौड़ करने लगे थे। उन्होंने एम.सी.डी., डी.डी.ए. से लेकर तमाम आलाकमानों के दरवाज़े खटखटाए।

जनवरी में 'अंकुर' नाम की एक स्वैच्छिक संस्था की पहल से यहां के बच्चों ने एक धरना दिया। राष्ट्रपति से मिलकर अपनी परेशानी सामने रखी। इन बच्चों ने 5,000 विद्यार्थियों के हस्ताक्षर सहित एक ज्ञापन राष्ट्रपति को दिया। इसमें अपील की गई थी कि परीक्षाएं ख़त्म होने तक उनकी झुग्गियों को न तोड़ा जाए। बावजूद इसके झुग्गियों का तोड़ना जारी रहा। नोटिस, बिना नोटिस लोगों को रातों रात बेघर कर दिया गया।

पुश्ता से हटाए गए लोगों को शहर से 30–40 किलोमीटर दूर फेंका गया। बवाना उन पुनर्वास बस्तियों में से एक है। यहां भी 18 और 12 गज़ के प्लॉट दिए गए। जिन लोगों के पास 1990 के कागज़ थे, उन्हें 18 गज़ के प्लॉट दिए गए। जिनके पास कागज़ पूरे नहीं थे, उन्हें 12 गज़ के प्लॉट दिए गए। इस आबंटन प्रक्रिया में भी जमकर धांधली की गई। प्रति प्लॉट रू. 7000/– जमा करने थे। लोगों को पैसे का जुगाड़ करने तक का समय और सहूलियत नहीं दी गई। नतीजन ग़रीब और मज़बूर हाल आधी आबादी वापस गांवों की ओर रुख कर गई। बहुत से लोग आसपास की कालोनियों और संगम विहार जैसी पुनर्वास बस्तियों में दड़बे जैसे कमरों में रहने लगे। पुश्ता की आबादी का एक मामूली हिस्सा होलम्बी कलां, बवाना, भलस्वा और मदनपुर खादर में अपने रहने के लिए कुछ जगह पाने में सफल हो पाया।

बवाना पुश्ता से लगभग 35 किलोमीटर की दूरी पर है। पुश्तावासियों की 'झुग्गियां टूटने से पूरा का पूरा ताना बाना बिखर गया। हजारों लोग बेरोज़गार हो गए। जो लोग बवाना आए भी वे मिली हुई ज़मीन को बचाने में ही रोज़ी रोटी से हाथ धो बैठे। इसके अलावा इतनी लंबी दूरी, आने जाने के समय व परिवहन में खर्च ने भी लोगों की कमर तोड़ दी।

बवाना पुनर्वास बस्ती

बवाना दिल्ली के उत्तर पश्चिमी किनारे पर अलग थलग स्थित है। यहां का माहौल पुश्ता से एकदम उलट है। निपट निर्जन, सुनसान, मुख्य शहर से कटा हुआ इलाक़ा।

केवल 10 प्रतिशत परिवारों को ही बवाना में प्लॉट मिल पाए। बवाना में 9272 प्लॉट बांटे गए इन प्लॉटों को 5 खंडों में विभाजित किया गया है। ए–1000 प्लॉट्स, बी–1800 प्लॉट्स, डी–1500 प्लॉट्स, ई–4000 प्लॉट्स के रूप में इन मकानों को बांटा गया।

इस ज़मीन को पाना भी सहज नहीं रहा। अपनी बची खुची संपत्ति, बचत, ज़ेवर बेचकर, क़र्ज़ लेकर किसी भी तरह पैसे का इंतज़ाम किया, पर वही काफ़ी नहीं था। अफ़सरों को घूस देनी पड़ी कि बिना अड़चन उनका काम हो जाए।

बवाना में लोगों को जगह तो दी गई, पर पांच साल की लीज़ पर। यानि सिर्फ़ पांच साल के लिए सरकार ने यह ज़मीन लोगों को दी है। उसके बाद वह यह ज़मीन वापस ले सकती है। ऐसे में घर ही नहीं, उन लोगों का विश्वास भी टूटा है। वे अपनी गाढ़ी कमाई मकान बनाने में खर्च कर नहीं सकते। लिहाज़ा गर्मी/धूप/बारिश में इस वीराने में वे बदहाल रहने को मजबूर हैं।

सरकार ने बवाना में लोगों को लाकर पटक तो दिया, पर जन सुविधाएं यहां नाम मात्र को हैं। इलाक़े में पानी निकासी की समुचित व्यवस्था नहीं है। मुख्य सड़क पर नाले बंद रहते हैं। जो नालियां हैं वे बंद और बदबू से भभकती रहती हैं। शौच और सफ़ाई व्यवस्था के नाम पर सार्वजनिक शौचालय तो बना दिए गए हैं, पर इनमें एक बार के उपयोग के लिए एक रूपया देना पड़ता है। एक ही परिवार यदि

इनका उपयोग करे तो दिन भर में 5–10 रू. ख़र्च होते हैं–कहां से आएं ये पैसे! लिहाज़ा लोग खेतों में शौच के लिए जाते हैं–औरतों के लिए खेतों में जाना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। रात को खेतों में जाना औरतों व बच्चों के लिए असंभव ही है।

सड़कें भले ही चौड़ी चौड़ी हों, मगर उन पर बिजली की कोई व्यवस्था नहीं है। घरों में दीवारें तक नहीं हैं, तो बिजली का सवाल कहां। बिना बिजली के चिलचिलाती धूप और गर्मी में लोग बदहाल जीवन जीने को मजबूर हैं। सरकारी बिजली तो आई नहीं। 100–150 रू. माहवार देकर कुछ लोगों ने बिजली प्राइवेट ठेकेदारों से ली है। हर रोज़ क़रीब 10 घंटे बिजली आती है। यह भी ग़ैरक़ानूनी व्यवस्था है। पकड़े जाने पर सज़ा का डर हर वक़्त सताए रहता है।

बिजली के साथ साथ पानी की व्यवस्था भी बदतर है। जो पानी है, दंडित है। सप्लाई किया जाता है, लेकिन वह पूरी आबादी के लिए पूरा नहीं पड़ता। पानी के लिए मारामारी, लड़ाई–झगड़ा यहां आम बात है। अधिकारी पानी साफ़ करने की गोलियां देकर फ़र्ज़ पूरा कर लेते हैं। गोलियों के इस्तेमाल के सही तरीक़े न जानने के कारण लोग दोनों तरह से पानी पीकर बीमार पड़ते हैं–पानी साफ़ करें तो भी, न करें तो भी।

पेट की बीमारियां बवाना में तेज़ी से फैली हैं, पर इलाज की व्यवस्था नहीं के बराबर। कभी कभी आने वाली मोबाइल–दवाईघर से लोगों का विश्वास उठ चुका है। डॉक्टर ठीक से बात नहीं करते। नफ़रत, बेइज़्ज़ती से पेश आते हैं। सभी को एक जैसी गोलियां पकड़ा देते हैं। इलाज हो तो कैसे–नज़दीकी अस्पताल, बाज़ार 3–5 कि.मी. दूर हैं। इलाज के साथ साथ आने जाने के लिए भी पैसे चाहिए। कहीं आने जाने के लिए बस व्यवस्था नहीं। शुरू में एक दो डी.टी.सी. की बस कभी कभी आती थी। अब प्राइवेट वैन, आर.टी.वी. भी आने लगी हैं, पर उनका व्यवहार, गालियां, बेइज़्ज़ती बरदाश्त के बाहर होती हैं। बस में बैठ पाए भी तो ड्राइवर, कंडेक्टर औरतों और लड़कियों के साथ बदतमीज़ी करते हैं।

सरकार ने कहने को बसा तो दिया, पर बसने के साधन देने से मुकर गई। जो लोग ज़िंदा हैं, उनके हाल ख़राब हैं। जो मर जाते हैं उनको सम्मान की मिट्टी भी नसीब नहीं होती। बवाना में कोई श्मशान या क़ब्रगाह नहीं है। बवानावासी

मृतकों के शरीर लिए एक मरघट से दूसरी जगह घूमते रहे–बवाना में कोई इजाज़त नहीं मिली क्योंकि वे बवाना गांव के नहीं थे। नरेला स्थित श्मशान में उन्हें जलाया या दफ़नाया गया।

बवाना पुनर्वास जे.जे. कालोनी बवाना गांव के पास ही है, किंतु किसी भी आपराधिक मामले की शिकायत रपट के लिए उन्हें नरेला थाने जाना पड़ता है। पूरे बवाना जे. जे. कालोनी इलाक़े में कोई पुलिस चौकी नहीं है। बस बस्ती के किनारे मुख्य सड़क पर एक पी.सी.आर. वेन खड़ी रहती है और एक दो जगह पर बीट–बॉक्स लगा दिए गए हैं। ये बीट बॉक्स सुरक्षा के नहीं ख़तरे के स्थान हैं। हाल ही में 13 साल की एक लड़की के साथ एक बीट बॉक्स में पुलिस वालों की मौजूदगी में कुछ गुंडों ने यौनिक शोषण किया था।

बवाना - काम और कमाई

कमाने खाने के अवसर नहीं–सरकारी काग़जों में तो बवाना औद्योगिक क्षेत्र ही घोषित है। मास्टर प्लान में बताए गए औद्योगिक क्षेत्र, जगह, शेड्स आज भी मौजूद हैं, पर उनमें से बहुत ही कम स्थानों का औद्योगिक प्रयोग हुआ है। जो हैं, उन फैक्ट्रियों में काम बहुत कम है। मालिकों की मनमानी खूब चलती है। ठेकेदारों के ज़रिए थोड़ा बहुत काम घर पर मिल जाता है, पर इसके बदले मज़दूरी इतनी कम कि पूरा परिवार दिन भर लगा रहे तो भी मुश्किल से 10–15 रू. मिल पाते हैं, बवाना पुश्ता से 35 कि.मी. दूर है। दूरी के कारण लोग दिल्ली आ जा नहीं सकते। रोज़ आना जाना तो क़तई संभव नहीं। जो दिल्ली में कमाने आते हैं। हफ़्ते में एक बार घर लौटते हैं।

बवाना आकर पुरुषों के रोज़गार तो छूटे ही हैं–औरतों की आर्थिक आज़ादी भी छिनी है। पुश्ता में औरतें भी आसपास की कोठियों में कमा लेती थीं। बवाना के आसपास के गांवों में उनके लिए घरेलू काम के मौके तक नहीं हैं। खेती का काम अगर मिले तो वे इस काम को जानती ही नहीं। बाज़ारों और दुकानों में भी काम के मौके नहीं हैं। कोई उनका न तो विश्वास करता है, न काम पर रखता है। अपनी रेहड़ी, खोमचा लगाकर कमाना एक सपना है। बवाना में बाज़ार तो है पर खरीदार नहीं हैं। जमा पूंजी, जेवर तक उजड़ने और बसने की प्रक्रिया में ख़त्म हो गए हैं। आमदनी न होने से घर ख़र्च चलाने का दोहरा बोझ और चिंता औरतों को घेरे

रहती है। बवाना में कई तरह के ख़तरे भी हैं। वे हमेशा अपने आपको असुरक्षित महसूस करती हैं। बिजली, पानी की व्यवस्था न होने से उन्हें खुले में नहाना, धोना पड़ता है। इससे आसपास के लोगों वे बदमाशों की छेड़छाड़ और यौनिक ज़्यादतियों का वे शिकार हुई हैं। पुलिस अपराधियों का साथ देती है, क्योंकि वही ताक़तवर हैं, पैसे वाले हैं।

पुश्ता में तो साथी थे, मन की बात एक दूसरे से कह लेते थे। आड़े वक़्त में एक दूसरे का दुख बांट लेते थे, मदद कर लेते थे। यहां आकर वे रिश्ते और अपनापन कहीं खो गया है। सामुदायिक संवेदनाएं कम हुई हैं। लगातार असुरक्षा, लड़कियों की शादी, बीमारी, बेरोज़गारी जैसी बहुत सी चिंताओं ने मनोवैज्ञानिक तनाव पैदा किए हैं। रोज़गार छिन जाना, परिवार का भरण पोषण न कर पाना। उन्हें हीन भावना का अहसास हो रहा है। नतीजन यहां पुरुषों और जवान लड़कों में नशाखोरी, शराब और अपराध की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

इन हालातों में औरतें खुद को और अधिक अकेला और असहाय महसूस कर रही हैं। रोज़मर्रा की परेशानियां उन्हें ही ज़्यादा झेलनी पड़ती हैं। बवाना में आमदनी न रहने से लोगों का खान–पान, रहन सहन का स्तर कम से कमतर होता गया है। इनमें भी औरतों और लड़कियों पर कुपोषण का सीधा असर पड़ा है। औरतों ने हमें बताया कि खाने पीने की कमी, काम के दोहरे बोझ और चिंताओं के कारण उनकी सेहत बिगड़ चुकी है। वे जल्दी जल्दी बीमार पड़ती हैं। हालांकि हमारे पास इस तथ्य के सबूत नहीं हैं, फिर भी बवाना के हालात और उन औरतों व बच्चों के बुझे हुए चेहरे देखकर इस बात की गहराई को सहज समझा जा सकता है। इस विस्थापन का असर बड़ों की ज़िंदगी के साथ साथ बच्चों के मन पर भी पड़ा है। उनकी शिक्षा और विकास पर प्रभाव पड़ा है। उनकी अपनी जानी पहचानी जगहें, दोस्त–सहेली, स्कूल–पढ़ाई छूटे हैं। मानसिक असुरक्षा बढ़ी है।

शोध प्रक्रियाएं

दिल्ली सरकार के विस्थापन अभियान के दौरान ही हमें सूचना मिली कि इसमें उन महिलाओं को भी अपना घर गंवाना पड़ा जो हमारे पिछले शोध के दौरान हमसे जुड़ी थीं। इनमें से कुछ हमारे अभियानों में भी जुड़ी थीं। इन महिलाओं से मिलने और उनकी खोज में हम बवाना पहुंचे। बवाना में अपने कुछ ही साथियों से हम मिल पाए। वहां के बिखरे हुए हालात देखकर हमारा मन हताश हो उठा। हमने

देखा–लोग कड़कती धूप, तपती ज़मीन पर बिना छाया अपने सामान के साथ खुले में पड़े थे। 18 या 12 गज़ के ज़मीनी टुकड़े को घूरते हुए उनकी भावनाएं थीं–इस टुकड़े का क्या करें, कैसे फिर से बसाएं। अपने जीवन के इस सच को मानने, फिर से कुछ नया गढ़ने में उन्हें महीनों लग गए। ज़मीन थी, पर साधन नहीं थे। पुराने घरों का ईंट, गारा, लकड़ी, फर्नीचर कुछ नहीं बचा था। चटाई की आड़े को घर का आकार दे दिया था। समय के साथ लोगों ने फिर से समझौता कर लिया था।

यह एक ऐसा समय था जब हम इंसानी रिश्ते और सवालों से खुद में जूझ रहे थे। सच तो सामने था, पर इस सच को मानने, फिर से नया कुछ गढ़ने में हम कैसे उनकी मदद कर सकते थे। हम उन लोगों से मिले, उनके साथ अपनी सीधी सच्ची बात/भावनाएं बाँटीं। 'हम आपके लिए कैसे सहायक हो सकते हैं।' लोगों से मिलना, बात करना और उनके मन की बात समझना यही हमारा लक्ष्य था। हमने औरतों के साथ मीटिंगें करनी शुरू कीं। इन मीटिंगों में वे अपनी तक़लीफ़ें बताते, पुराने दिन याद करते, आगे की चिंताएं बताते।

औरतों के साथ बात करके दुख के साथ साथ हैरानी होती उनकी ताक़त देखकर। इन तमाम दुःख दर्द के बावजूद वे टूटी नहीं थीं। तमाम दिक़्क़तों के बावजूद औरतों ने अपनी बेटियों, बच्चों की पढ़ाई के बारे में चिंता ज़ाहिर की। विस्थापन के कारण उन्हें बच्चों की पढ़ाई छूट जाने का डर था। वे अपने बच्चों को पढ़ाना चाहती थीं, पर इन हालातों में कैसे पढ़ाएं–यही चिंता थी। यह भी सुनने में आया कि 300 बच्चों को फेल करके बवाना स्कूल से निकाल दिया गया है। वे हमसे मदद चाहती थीं ताकि इन बच्चों को फिर से पढ़ाया जा सके।

उद्देश्य

हमें लगा कि हमें न केवल लड़कियों की पढ़ाई के हालात को समझना है, बल्कि फिर से उनकी पढ़ाई जारी करने के लिए सहायता भी करनी है। एक महिला संस्था होने के नाते महिला शिक्षा के प्रति हमारा ठोस नज़रिया और सोच है। महिलाओं की शिक्षा उनके सशक्तिकरण की प्रक्रिया में सहायक है। लड़कियों का स्कूल जाना उनके सशक्तिकरण की पहली सीढ़ी हो सकती है। वे पढ़ लिखकर अपने अधिकारों के बारे में जागरुक हैं, आत्मनिर्भर हों यही हमारा उद्देश्य है। अपने इस नारीवादी

नज़रिए के साथ बालिका शिक्षा पर विस्थापन के प्रभावों को समझने और उनके विश्लेषण के लिए हमने यह लघु शोध कार्य शुरू किया।

इस शोध कार्य का निर्णय हमने इस यक़ीन के साथ लिया कि जिस रूप में इस समुदाय ने इस मुद्दे को उठाया है, उसका विस्थापन के खिलाफ़ संघर्ष और इन लड़कियों के जीवन पर सीधा असर पड़ेगा। हमारा उद्देश्य था, न सिर्फ़ बालिका शिक्षा पर विस्थापन के असर को समझना, पर समुदाय को भी बालिका शिक्षा की अहमियत को समझने में मदद करना। आपसी भागीदारी के साथ कुछ इस तरह से काम करना कि हर लड़की स्कूल जा सके।

इस शोध की शुरूआत हमने पैंतीस लड़कियों के साथ की। ये हमारे साथ जुड़ी हुई थीं। इन लड़कियों के हालातों और उनके अलग अलग पहलुओं को समझना इस मुद्दे पर समझ विकास के लिए पहला क़दम था हमारी कोशिश थी कि ये सभी लड़कियां अलग अलग उम्र (10–12, 13–15, 16–18 साल), समुदाय (ढोलक समुदाय, हिंदू, मुस्लिम), ब्लॉक (ए, बी, सी, डी, ई) और कक्षावर्ग (प्राथमिक पूर्ण, प्राथमिक अपूर्ण, माध्यमिक पूर्ण, माध्यमिक अपूर्ण, उच्चतर पूर्ण, उच्चतर अपूर्ण, स्नातक) से हैं। हमने लड़कियों और उनकी मांओं को इस शोध के बारे में जानकारी दी–हमारा उद्देश्य और सोच कि हम यह शोध क्यों करना चाहते हैं। लड़कियों के साथ बात करके एक प्रश्नावली (अंत में जोड़ी गई है) बनाई गई। पहले सबके साथ बात करके इस प्रश्नावली को भरा गया। इसमें कुछ मौलिक सवालों के आधार पर बात की गई जो उनके जीवन से जुड़े थे।

कुछ मौलिक तथ्य इस प्रश्नावली से निकालने के बाद सभी लड़कियों के साथ विस्तार से बात की गई। फिर इसे अंतिम या फाइनल रूप दिया गया। इस बातचीत के आधार पर ही उनकी कहानियों को लिखा गया। इनसे हम पढ़ाई छूटने से लेकर पढ़ाई को जारी रखने में आने वाली बाधाओं तथा विस्थापन के प्रभाव को समझ सकते हैं। इस पूरी शोध प्रकिया से निकले तथ्यों और जानकारियों के आधार पर इस मुद्दे का विश्लेषण किया गया। ऐसी रणनीतियां अपनाई और बनाई गईं जिनसे इन लड़कियों की शिक्षा व पढ़ाई को बेहतरीन रूप दिया जा सके, बालिका शिक्षा पर विस्थापन के प्रभावों को समझते हुए बेहतर नीतियों व सुझावों को सामने लाया जा सके।

निष्कर्ष और विश्लेषण

यह एक बहुत ही छोटा और सीमित शोध है, फिर भी इससे हमारी कई पूर्वधारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लग गया है। हमने मान ही लिया था कि विस्थापन के बाद ज़्यादातर लड़कियों की पढ़ाई छूट ही गई होगी, लेकिन इस शोध से पता चला कि –

- आधी से ज़्यादा लड़कियों ने बवाना आकर भी अपनी पढ़ाई जारी रखी है। बाकी की पढ़ाई छूट गई है।
- इस शोध के दौरान जिन लड़कियों से बात की गई थी, उन पैंतीस में से 29 ने विस्थापन के समय अपनी फाइनल परीक्षा दी थीं। इनमें से अधिकतर ने बताया कि पहले वाले स्कूल में उनके रिज़ल्ट बहुत अच्छे आ रहे थे। इस बात को हम 13 लड़कियों के संदर्भ में प्रमाणित नहीं कर सकते, क्योंकि विस्थापन के दौरान उनके प्रमाण पत्र और मार्कशीट खो गई थी। *(13/35)*

बवाना में अपनी पढ़ाई जारी रखने में लड़कियों को काफ़ी परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। उन्होंने बताया कि दाख़िला लेने में कभी राशन कार्ड न होने, निवास का सबूत न होने, कभी रिपोर्ट कार्ड न होने, कभी टी. सी न होने या कभी किसी और बहाने से उन्हें बवाना में दाख़िला देने में लापरवाही और उपेक्षा बरती गई। इस कारण नाहक ही उनकी पढ़ाई में देरी हुई।

''विस्थापन के बाद पेपर देने के लिए हम लोग कुछ समय पहाड़गंज रहे। इसके बाद हम बवाना आ गए। मेरा परिवार बवाना में दाख़िला दिलाना चाहता था, लेकिन हमारे पास राशन कार्ड न होने के कारण बवाना स्कूल में मुझे दाख़िला नहीं मिला। राशन कार्ड बनवाते बनवाते देर हो गई और अगस्त में जाकर मुझे दाख़िला मिला।'' – रेहाना

- विस्थापन के फलस्वरूप उनकी शिक्षा के हालातों में बहुत बड़ा अंतर आया है। उनके घर से स्कूल बहुत दूर हो गया। बैठने तक की जगह नहीं है, स्कूल के अंदर मूल व्यवस्थाएं (टॉयलेट, कमरे, खेल का मैदान, लायब्रेरी, इलाज की सुविधाएं) बहुत घटिया हाल में हैं।
- अधिकतर लड़कियों ने बताया कि उन्हें स्कूल में दोपहर का खाना और किताबें मिलती हैं, भले ही यह खाना पुश्ता के मुक़ाबले कम परिमाण में और कम पौष्टिक है।

- एक को छोड़कर सभी लड़कियों ने अध्यापकों द्वारा भेदभाव बरतने की बात की और ये कि कैसे उसका सामना किया। कुछ लड़कियों ने अध्यापकों द्वारा किए गए शोषण और उत्पीड़न के बारे में भी बताया।

''दोपहर का खाना बांटते समय वे बेइज़्ज़त करते हैं – कैसे खड़े हो लाइन लगाकर भिखारियों के बच्चे।'' – परवीन

''पुश्ता में हमें खेलने का सामान दिया जाता था, लेकिन यहां हमें कुछ भी नहीं दिया जाता और सख़्त मना किया गया कि ये चीज़ें स्लम की लड़कियों के लिए नहीं हैं।'' – तबस्सुम

- बवाना आकर लड़कियों की शिक्षा के बारे में उनके माता पिता की प्राथमिकताएं बदली हैं। वे अब लड़कियों की शिक्षा को उतना ज़रूरी नहीं मानते। इसके कई कारण आर्थिक स्थिति और सुरक्षा से जुड़े हुए हैं, जैसे–परिवार की आय बढ़ाने के लिए लड़कियों को कमाना पड़ता है, या कि परिवार उनकी पढ़ाई का ख़र्च उठा नहीं सकता, स्कूल दूर है और आने जाने में उनके साथ शोषण और उत्पीड़न का ख़तरा बना रहता है।
- इस समुदाय के बच्चों के साथ जातीय, सांप्रदायिक और यौनिक हिंसा शिक्षा में बाधक तत्व हैं। विस्थापित समुदाय बवाना गांव के जाट, गुर्जर समुदाय द्वारा हिंसा और शोषण का निशाना बनते हैं। लड़के और लड़कियां दोनों ही अध्यापकों और अपने साथ पढ़ने वाले अन्य बच्चों द्वारा दी गई तकलीफ़देय तानों/बातों का सामना करते हैं।
- इसके अलावा, लड़कियां बवाना गांव के लड़कों और पुरुषों द्वारा मौखिक और शारीरिक उत्पीड़न का सामना भी करती हैं।
- अध्यापकों द्वारा यौनिक शोषण के बारे में उन्होंने ख़ासतौर पर तो कुछ नहीं बताया, पर कुछ लड़कियों ने बताया कि उन्हें अपने कुछ अध्यापकों के व्यवहार से खासी असुविधा होती है।

''यहां की मैडम का व्यवहार ठीक नहीं है, वे झुग्गी वाले कहकर बुलाती हैं।'' – नसरीन
''मेरे स्कूल में नए दोस्त नहीं बने हैं, क्योंकि वे जे. जे. कालोनी के बच्चों के साथ भेदभाव करते हैं, वे हमारे साथ खेलते नहीं हैं, वे हमारे साथ बैठना भी पसंद नहीं करते हैं।'' – खुशबू
''बच्चे मुझे चिढ़ाते हैं – तेरे मम्मी डैडी तो भंगी हैं।''
''जब कुछ चोरी हो जाता है तो वे कहते हैं–'जे .जे. कालोनी के बच्चे चोरी करते हैं।'' – नसीमा

बवाना में स्कूल जाने वाली लड़कियों पर हिंसा के विभिन्न रूपों को उजागर करने में यह अध्ययन सहायक हुआ है। हो सकता है कि जो लड़कियां स्कूल जाती हैं, वे इस बारे में बात करना पसंद न करें, क्योंकि ऐसा करने से उनके माता पिता उनकी पढ़ाई छुड़ा सकते हैं।

ए ब्लॉक (537) जीनत–13 ने हमें बताया कि उनके 'गुरूजी लड़कियों के साथ ठीक से पेश नहीं आते। एक बार उन्होंने एक लड़की को छाती पर मारा था, वे लड़कियों को ग़लत बातें बोलते थे।'

''अध्यापक स्कूल कम ही आते हैं, वे बच्चों के साथ भेदभाव करते हैं, उनकी बातें समझ में नहीं आती हैं।'' – खुशबू

जिनकी पढ़ाई छूट गई है

15 लड़कियों की पढ़ाई छूट गई है। लड़कियों की पढ़ाई छूटने का मुख्य कारण पैसे की कमी, घर पर रहकर परिवार की आय बढ़ाने के लिए काम करना और बस्ती से स्कूल की दूरी तथा परिवार द्वारा उनकी पढ़ाई को ग़ैरज़रूरी मानना है। 9 लड़कियां पढ़ाई छूटने के बाद किसी व्यवसाय के साथ जुड़ी हैं। इनमें से 6 लड़कियों ने मेहनताने पर घर बैठे ही पीस रेट पर मोती बनाने का काम शुरू किया है, 1 हस्तशिल्प, 1 पोलियो ड्रॉप पिलाने का काम कर रही है। 5 लड़कियां व्यवसाय नहीं कर रही हैं, पर उनके पास कढ़ाई, सिलाई का हुनर है। 15 में से 1 ही लड़की ऐसी है जिसके पास कोई हुनर नहीं है और पढ़ाई/व्यवसाय भी नहीं कर रही। इनमें से किसी ने इस काम की कोई ट्रेनिंग नहीं ली है। यह काम उन्होंने अपने परिवार और अभ्यास से ही सीखा है।

परंपरागत रूप से मनोरंजन (नाच गाकर) द्वारा कमाने वाले ढोलक समुदाय की एक लड़की इसी तरह परिवार के साथ सड़क पर नाच गाकर आजीविका कमाती है। केवल एक ही लड़की ऐसी है जो पढ़ाई छूटने के बाद न तो कोई व्यवसाय कर रही है, न ही उसने कोई व्यवसायिक हुनर सीखा है।

''यहां आकर मैंने कुछ नहीं सीखा, पुश्ता में मैंने सिलाई व कढ़ाई सीखी थी। यहां आकर हमारा मन नहीं लगा।'' – नाज़रा
''बवाना एक ऐसी जगह है जहां कुछ करने को नहीं है, आय का कोई स्रोत नहीं है।'' – ज़ीनत

लड़कियों की मानसिक स्थिति

केवल एक लड़की थी जो बदले हुए हालात में खुश और सहज थी। बाकी सभी अलग अलग रूपों में अपने जीवन के बिखराव से असंतुष्ट थे।

''विस्थापन के कारण मेरी पढ़ाई छूट गई। यहां आकर पैसे की कमी हो गई, पर मेरे भाई पढ़ते हैं।'' – उर्मिला
''नियमित पढ़ाई में बहुत दिक़्क़त होती है। पहले तो पैसे की तंगी है और अब मैं बड़ी भी हो रही हूं। अब मम्मी पढ़ाना नहीं चाहती। यहां का माहौल खराब है।'' – नसीम बानो

पैंतीस में से तीस लड़कियां आगे पढ़ना चाहती हैं। तीन पढ़ाई छोड़ चुकी हैं और आगे पढ़ना भी नहीं चाहतीं।

पैंतीस में से 15 लड़कियों ने बताया कि अगर उन्हें मौक़ा मिले तो वे अपनी पढ़ाई को जारी रखना चाहेंगी।

अभिभावकों की सोच

अभिभावकों ने बताया कि वे अपनी बेटियों को पढ़ाना चाहते हैं। (15 में से 5) अभिभावकों ने कहा कि वे अपनी बेटियों को आगे पढ़ाना नहीं चाहते या पढ़ाने में अक्षम हैं।

हालातों में बदलाव के कारण शिक्षा के प्रति बहुत सी लड़कियों और उनके परिवारों की इच्छा पर प्रभाव पड़ा है। इस अध्ययन में जिन परिवारों को शामिल किया गया है उन्हें हम लड़कियों की शिक्षा के महत्व का अहसास करा पाए हैं। पुश्ता पर रहते हुए उन्हें पूरा विश्वास था कि वे कम से कम दस साल तक तो अपनी लड़कियों को पढ़ा पाएंगे। जबकि बवाना में आकर उनका यह इरादा निश्चित ही कमज़ोर हुआ है।

भले ही लड़कियों की पढ़ाई रुकने में सामाजिक और आर्थिक कारण ज़िम्मेदार रहे हैं मगर यह कहीं न कहीं अस्थाई स्थिति भी है जहां वे अपने अभिभावकों ख़ासतौर से पिता के रूढ़िवादी सोच और फैसले के सामने खुद को विवश पाती हैं।
ऐसा बहुत सी आपात स्थितियों, जैसे युद्ध, सांप्रदायिक दंगे, विस्थापन और प्राकृतिक आपदाओं की स्थिति में भी पाया जाता है। जब कमाने के साधन ख़त्म हो जाते हैं, तो समाज/समुदाय सबसे पहले औरतों और लड़कियों के अधिकारों और आज़ादी पर रोक लगाते हैं। बदले हुए आर्थिक परिवेश में अपनी संस्कृति और परंपरागत मूल्यों को बचाए रखना पितृसत्ता का मूल ध्येय होता है। इसमें औरतों का श्रम शोषण पुरुषों का अधिकार बन जाता है।

विस्थापन का लड़कियों की आत्मछवि और आत्मव्यक्ति पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। पुश्ता के मुक़ाबले इस पुनर्वास कालोनी में रहने से आर्थिक स्तर कम हुआ है और कठिनाइयां बढ़ी हैं।

''लड़कियों को देखते रहते हैं व गंदी बातें भी लड़कियों को देखकर करते हैं और यहां पर लड़कियां अकेली कहीं नहीं जा सकती हैं।'' – जूली
''पैसे की कमी और माहौल अच्छा नहीं है जिसकी वजह से मेरी मां ने मुझे पढ़ने नहीं जाने दिया।'' – नाज़रा

इलाक़े के हालात और परिवार की आर्थिक तंगी के कारण उनमें आत्मविश्वास डगमगाया है। उनमें गुस्सा और क्षोभ बढ़ा है। अपने बारे में इस हीन भावना का पढ़ाई में उनकी भागीदारी और स्तर पर प्रभाव पड़ा है।

''मुझमें और मेरे भाई में यही अंतर है कि मेरा भाई पढ़ सकता है, पर मैं पढ़ नहीं सकती।''
''लड़कों को परेशानी का सामना नहीं करना पड़ता, क्योंकि वो लड़के हैं।''– आशियाना

अध्यापकों के विचार

कुछ और कारणों पर भी हम ग़ौर कर सकते हैं। स्थानीय स्कूलों तथा अध्यापकों के साथ बात करने पर सामने आया कि स्थानीय स्कूलों में बवाना के बच्चों के प्रति बहुत गुस्सा/दुर्भाव है। जाति और सांप्रदायिक द्वेष, के अलावा अध्यापकों का कहना है कि पुनर्वास कालोनी से अचानक इतनी बड़ी तादाद में बच्चों के आ जाने से बवाना में स्थानीय स्कूलों की आंतरिक व्यवस्था डगमगा गई है। पुनर्वास बस्ती के बच्चों के परीक्षा में फेल हो जाने का एक कारण बवाना में स्थानीय स्कूलों की सीमित क्षमता भी हो सकती है। यही कारण है कि बस्ती के बच्चों को दाख़िला न देने के लिए उन्हें जान बूझकर फेल कर दिया गया है ताकि वे दोबारा कोशिश ही न करें। जिन बच्चों को फेल कर दिया गया उनके रिपोर्टकार्ड बड़ी लापरवाही से भरे गए हैं–कई मामलों में तो विषयों के नंबर भी नहीं दिए गए हैं। रिपोर्टकार्ड पर भद्दे तरीके से 'फेल' लिख दिया गया है। नतीजन बच्चों और उनके अभिभावकों के मन में अपने साथ धोखाधड़ी का शक पैदा हुआ है।

इस शोध के दौरान अध्यापकों ने जो विचार रखे हैं उनसे भी यह द्वेष भावना झलकती है कि पुनर्वास बस्ती के बच्चे अच्छे विद्यार्थी नहीं थे।

डॉली कहती है–'वे सोचते हैं कि झुग्गी वाले कुछ नहीं जानते, हमें जान बूझकर फेल कर दिया गया।'

उनका यह कहना किसी वास्तविक अनुभव पर आधारित नहीं जान पड़ता। वास्तव में, जिन 35 लड़कियों के साथ इस अध्ययन में बात की गई थी, उनमें से 20 लड़कियों ने बताया कि वे अपने पहले स्कूल में अच्छे नंबर प्राप्त करती थीं।

अफ़सोस की बात यह है कि इस सच्चाई को सामने लाने वाले बहुत कम रिपोर्ट कार्ड ही विस्थापन के बाद बच पाए हैं।

''अब पहले जैसी बात नहीं रही''

विस्थापन के बाद पुनर्वास इस तरीके से किया गया है कि हरेक परिवार अपने पुराने पड़ोसियों से बहुत दूर हो गया है।

पुराने स्कूल की यादें उन्हें सताती हैं। उन्हें याद आता है कि वे पैदल ही चलकर स्कूल चली जाती थीं। रोज स्कूल जाते थे। वहां किसी तरह का डर नहीं था। इसलिए पढ़ाई पर रोक भी नहीं थी। वहां टीचर मारती थी तो प्यार से भी पेश आती थी। पढ़ाई अच्छी होती थी और वे भी पढ़ने में अच्छी थी। विस्थापन के समय अधिकतर बच्चे परीक्षा दे रहे थे। नतीजे का इंतजार था। अगली कक्षा में जाने की खुशी थी। ऐसे में बिना नोटिस उनकी झुग्गियां गिरा दी गईं। इतना कम समय दिया गया कि वे अपना सामान भी नहीं जुटा पाए। ऐसे में कौन उनकी पढ़ाई की तरफ़ ध्यान देता। उनकी पढ़ाई, स्कूल में रिजल्ट लेना, टी.सी लेना सब जैसे बेकार की बातें बन गईं। मां बाप के साथ वे भी सामान, ईंट गारा बचाने में जुट गईं। पढ़ाई कहीं पीछे छूट गई।

''सपने क्या साकार होंगे?''

इतनी परेशनियों के बावजूद 35 में से 20 लड़कियां आज भी अपनी पढ़ाई जारी रखे हैं। किसी भी देश, समाज के लिए वे बहुत खतरनाक हालात होते हैं जब बच्चों के सपने मुरझा जाएं। इस पूरे शोध कार्य के दौरान हमें केवल दो लड़कियां ही मिलीं जो पढ़ लिख कर कुछ बनना चाहती हैं।

परवीन का सपना है कि वह पढ़ लिख कर पुलिस बनेगी और सबको पकड़कर मारेगी। परवीन की बात के पीछे से हमें पूरे पुलिस तंत्र के प्रति आम आदमी की सोच सुनाई दी। जूली ने दसवीं पास की है। वह आगे पढ़ना चाहती है, पर नहीं पढ़ पाई। वह स्कूल टीचर बनना चाहती है। बच्चों को पढ़ाना चाहती है। जूली चाहती है कि वह भी नवज्योति के बच्चों को पढ़ाए। उम्मीदें और हौसले टूटे नहीं हैं। वे मौजूदा दिक़्क़तों को भी सुलझा सकती हैं। मगर अकेली कैसे करें। समाज का रवैया उन्हें रोकता है। समाज को चुनौती देना उतना आसान भी नहीं है। इसलिए पहल तो ख़ुद से ही करनी होगी और वे ऐसा कर रही हैं।

जो लड़कियां अभी भी पढ़ रही हैं, वे 12–14 साल हैं। यानि कक्षा 5–8 तक लड़कियों की पढ़ाई के स्तर में कोई ख़ास गिरावट नहीं आई है। बवाना में आकर उनके लिए पढ़ना सहज संभव हो पाया, क्योंकि बवाना में हर ब्लॉक में प्राथमिक विद्यालय हैं। इन स्कूलों में फ़ीस माफ़ी, वर्दी, किताबें और दोपहर का खाना जैसी तमाम मूल शिक्षा सुविधाएं मौजूद हैं। इन स्कूलों में लड़कियों को पढ़ाना अभिभावकों के लिए सहज है, क्योंकि वे आसानी से आ जा भी सकती हैं।

इस पूरे शोध कार्य के दौरान हमें लड़कियों व उनके परिवार की सोच में कई बदलाव दिखाई दिए। बातचीत के दौरान उन्हें समझाने पर कई लड़कियां फिर से दाख़िले के लिए तैयार हुईं।

पुराने स्कूल की यादें आज भी बच्चों के मन के किसी कोने में छिपी हैं। जब पुराने स्कूल की याद आती है तो नया सब बेमानी लगता है। नए स्कूल की कमियां हावी हो जाती हैं। जो लड़कियां पढ़ रही हैं, उन पर काम का दोहरा तिहरा बोझ है। वे पढ़ाई के साथ साथ घर का काम और छोटे भाई बहनों की देखभाल भी करती हैं। साथ ही परिवार के व्यवसाय में भी हाथ बंटाती हैं।

कुछ सुझाव

स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं, बच्चों की सुरक्षा, उनके खेलने पढ़ने की समुचित व्यवस्था, टीचरों के व्यवहार, पढ़ाई के तरीक़ों, सजा के नाम पर होने वाली अमानवीय ज़्यादतियों, टीचरों के आचार संहिता, बच्चों के हुनर विकास भी शिक्षा से जुड़े विभिन्न पक्ष हैं, जिनकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। नहीं, यह कोई नई बात नहीं है, पिछले पांच दशकों से शिक्षा के हक़ की लड़की की मांगें भी रही हैं, पर हमारा मानना यह है कि प्राथमिक शिक्षा के नाम पर स्कूल खोल देना, वर्दी और किताबें बांट देना ही काफ़ी नहीं है। अगर इस तरह से लोगों को अपने घरों से बेघर किया जाए, अगर ऐसा ही पुनर्वास होता है तो शिक्षा का संवैधानिक हक़ किस काम का?

ऐसा नहीं है कि इन हालातों को सुधारा नहीं जा सकता। अभी भी बहुत कुछ किया जा सकता है। और इस शोध में जुड़ी लड़कियों के अभिभावकों और हमारे कुछ सुझाव इस प्रकार हैं –

सरकार की भूमिका

- बवाना पुनर्वास बस्ती में रहने वालों को मूल सुविधाएं पाने के हक़ को मान्यता दी जाए। दिल्ली सरकार इन्हें इज़्ज़त से रहने, काम करने का हक़ और मदद दे। इन्हें आश्वासन दिया जाए कि ये यहां से दोबारा बेघर नहीं किए जाएंगे।
- विस्थापित बच्चों को शिक्षा में रियायत देकर, बच्चों के दोबारा दाख़िले की ख़ास व्यवस्था करके, स्कूलों में बच्चों के लिए पुस्तकालय, खेलने की समुचित व्यवस्था करके, स्कूलों में बच्चों की सुरक्षा के इंतज़ाम, इलाक़े में स्कूल बसें चलाकर ताकि लड़कियां बसों में होने वाली परेशानियों से बच सकें और समय पर स्कूल पहुंच सकें।

अभिभावकों की भूमिका

- स्कूल व्यवस्था पर लगातार निगरानी रखते हुए।
- पढ़ाई को और रुचिकर बनाकर।
- बच्चों को स्कूल जाने का मौका देकर, उन्हें प्रोत्साहित करके।
- बच्चों को घरेलू काम व ज़िम्मेदारियों के बजाय पढ़ाई के लिए समय देकर।

स्वयं सेवी संस्थाओं की भूमिका

- शिक्षा जागरुकता अभियान चलाकर।
- शिक्षकों को जेंडर प्रशिक्षण देकर उन्हें संवेदनशील बनाया जाए।
- युवाओं को शिक्षा के साथ साथ काम, रोज़गार सिखाने वाले कार्यक्रम चलाकर।

भविष्य की सोच

बवाना में मौजूदा असुरक्षित माहौल, आर्थिक दबावों के अलावा लड़कियों पर हिंसा का ख़तरा और मेहनत को देखते हुए यह लगता है कि अपनी पढ़ाई को जारी रखने वाली लड़कियां भी 12वीं तक स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाएंगी। अगर वे ऐसा करती भी हैं, तो इससे उन्हें रोज़गार और ज़्यादा आमदनी का कोई खास फायदा होने वाला नहीं है। मौजूदा काम के मौक़ों में आमदनी, सुरक्षा बहुत कम है और ये काम हुनर से जुड़े हुए नहीं हैं। स्कूल से पढ़ाई छूट जाने के बाद लड़कियां इन्हीं व्यवसायों में ही लगी हुई हैं।

...मुझे पढ़ना है, क्योंकि मैं लड़की हूं
...पढ़ने की मुझे मनाही है सो पढ़ना है
मुझे दर दर नहीं भटकना है सो पढ़ना है
मुझे अपने पांवों चलना है सो पढ़ना है
सपनों ने ली अंगड़ाई है सो पढ़ना है...
कुछ करने की मन में आई सो पढ़ना है
कई ज़ोर जुल्म से लड़ना है सो पढ़ना है
कई क़ानूनों को परखना है सो पढ़ना है
मुझे नए धर्मों को रचना है सो पढ़ना है
मुझे सब कुछ ही तो बदलना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

(कमला भसीन की कविता से)

इस शोध के तत्कालिक परिणाम

- शिक्षा निदेशक, दिल्ली सरकार व ''सोशल ज्यूरिस्ट'' संस्था के सहयोग से हम ऐसे 26 बच्चों का दाख़िला दोबारा करा पाए जिन्हें या तो फेल कर दिया गया था, या फिर जिनकी पढ़ाई छूट गई थी।

- दिल्ली सरकार की मदद से डी.टी.सी. से संपर्क किया और बवाना जे.जे. कालोनी से स्कूल के समय पर बस व्यवस्था कराई गई।

- बवाना में एक झोला लायब्रेरी की शुरुआत की गई हैं जिसमें 200 किताबें बच्चों को पढ़ने के लिए बांटी जाती हैं। इस कार्यक्रम की शुरुआत 20 अक्तूबर से की गई और किशोरी समूह ही इसकी देखरेख कर रहा है।

- जागोरी ने दिल्ली सरकार के शिक्षा विभाग से लड़कियों को साइकिल दिए जाने का अनुरोध किया ताकि वे बवाना स्थित स्कूल आ जा सकें जो कि इलाक़े से काफ़ी दूर पड़ता है।

- बवाना में किशोरियों के एक समूह को संगठित और ताक़तवर बनाने की कोशिशें जारी हो, ताकि वे एकजुट होकर अपने हक़ों के लिए जानकारी पा सकें, संघर्ष कर सकें और सीखने सिखाने की प्रक्रियाओं को हम और पुख़्ता ढंग से चला सकें।

- इसके साथ साथ हमारा प्रयास है कि हम इलाक़े के युवाओं को भी संगठित और एकजुट कर पाएं ताकि वे अपनी सामुदायिक और दैनिक समस्याओं से सकारात्मक समझ के साथ जूझ सकें और सुलझा सकें।

जागोरी
JAGORI